Late Dr. Sneha Bhandari

6th October 1944 - 9th May 1993

1 आत्मा और शरीर

आत्मा
तू बड़ी कमजोर,
चल देती है छोड़कर
जर्जर घर
और शरीर,
तू बड़ा निडर,
डटा रहता है पर्वत सा
साथ छूट जाने पर
आग में जूझता है
पानी में डूबता है
जाकर मिलता है
कणकण माटी में,
क्यों नही अपनाता
किसी नई आत्मा को ?

2 उड़ कर देख लिया

बाहर उड़कर देख लिया,
मैं समझ गई
उड़ना कोई आसान नहीं,
ईर्ष्या से ताकते लोग
लालच से गोली ताने शिकारी
और न जाने कितने
अपने जैसे पक्षी
जो नीचा दिखाना चाहते हैं
तेज उड़ने वाले को
गिराना चाहते हैं ।

3 टटोलती रहती है अपनापन

बहुत चल लिए,
अब तो थक गई हैं
बैसाखियां,
ज्यों इन्तजार में
चौकाती है हर आहट,
वैसी लगती है
कोई भी आवाज
चरमराहट बैसाखियों की ।
कम वोल्टेज की रोशनी के बल्ब
जैसी ये आंखें
टटोलती रहती है अपनापन ।

4 अबके बसंत क्या बौरायेंगे आम ?

क्या क्या तोड़ोगे,
कुछ टूटता है तो
कुछ बन जाता है,
न कोई कुछ
खत्म कर पाया है
न कर पायेगा
जितना दबाब डाला है
उग आई है
एक नई आंख ।
देखो विचार बन गए हैं
अमरबेल
बढ़ रहे हैं इधर उधर,
खुशियों का पेड़
झुक गया है बोझ से,
और जीवन का पंछी
उदास बैठा अपनी कोटर में,
पूछता एक ही सवाल
अबके बसंत क्या
बौराऐंगे आम ?

5 आंगन की तुलसी

मेरे आंगन की तुलसी को
जबसे तुम सींचने लगे हो
वह बागी हो गई है,
उसके चेहरे की
हर सलवट पर
उग आई हैं
कुण्ठाओं की डालें,
हवा के हर झोंके को
लालच से स्वयं मे
समेट लेना चाहती है
किसी भी राहगीर को देख
आशा से ताकती है
जड़ों मे उसके
जब देखूं खून आता है
ऊपर ऊपर से
मुसकराती है तो क्या,
उसके अंदर की आग
हर पल दहकती है
रास नही आती उसे अब
देशी साड़ी,मोटा दुपट्टा ।

6 आरोप

बच्चे पर बच्चा
उगता गया
मेरे इर्दगिर्द ।
जिन्होने छीना कौर
मेरे और मेरे बच्चों के मुँह से,
फिर खाकर
और डकार कर उसे
सड़ा गला बासी कहा
और उछाल दिए मुझपर
कई आरोप प्रत्यारोप लांछन ।
मैं तर्कहीन ताकती हूं,
अपने चेहरे की
हर नई रेखा से
उन आरोपों की
गहराई आंकती हूं ।

7 चेहरा

चेहरा
वरदान याकि अभिशाप,
अच्छे चेहरे पर
गड़ जाती है आंख
और उगने लगते हैं
अनगिनत सांप कि
जिन्दगी भार बन जाती है,
जब किसी की अच्छाई
लोगों के आंख आती है ।
सबकी कुण्ठाऐं
करती है आघात,
हो जाती है आहत ।
अपनेपन की दूब
झांकने लगती है,
चूभने लगती है वह
पथराई धरती सी आंख
कोई गलत नही
दूसरों के मन मे
उग आई ईर्ष्या
बार बार ऊंगली उठाती है
यह गल्ती, वह गल्ती ।

8 चश्मा

यह चश्मा तुमने
कब लिया कि
अब देखते हो
पैसा सिर्फ पैसा ?
क्यों भूल गए उसको
जिसने बच्चों का कौर छीन
तुम्हारा अस्तित्व
बनाये रखा
और तुम
पिता का हाथ
सिर से हटते ही
मा की ममता में
पैसे का रंग भर
चश्मे की
बिक्री बढ़ाते हो
दूसरों की उम्र को
सीढ़ी बनाकर चढ़ने वाले,
इस सीढ़ी को यूं ना पटको
कि तुम्हे अपनी
भावनाओं की आवाज
बेहूदी लगे ।

9 भाषा

्कहाँ से आगई
यह भाषा
कहने सुनने को
काफी नही ये आँखें
यह शरीर ।
लगता है
उधेड़ कर रख दूं
भाषा की यह बुनाई
जिसमे अनेक अनेक अर्थ हैं
चाहे जैसा तोड़ो मरोड़ो
चाहे जो निकाल लो मतलब
जो हमारे बीच
बालिश्त भर बैठी
और ले गई दूर
करोड़ों मील दूर ।
ऐसी कैसी भाषा,
ज्यों प्याज के छिलके,
निकालते जाओ
निकलते जाएँ
हवा के रूख पर निर्भर है
रूला भी दे ।
यह भाषा
क्यों बन जाती है अनन्त,
ज्यों आसमान कुछ भी नही
पर फैला है यहां से वहां तक
पूरी दृष्टि में,
शायद सृष्टि में
यह भाषा
काली मिट्टी की तरह
क्यों फैला देती है
दरारें यहां से वहां तक ।
यह भाषा
संगीत की तरह
मेरे मूड पर निर्भर
हॅसाती है
रूलाती है
और कभी धकेल देती है
एकाकीपन के
अंधेरे कुए में ।
क्या कोई ऐसी भाषा नही
जिसका निकलता हो
एक ही मतलब,
जो मै कहूं
और जो कोई सुने
उसमे फासला न हो
एक तिल का भी ।
लेकिन शायद
आंखों और शरीर
की भाषा मे भी
पूर्णता नही है
मोनालिसा की मुसकान
सबके लिए
अलग अलग अर्थ
रखती है फिर
क्या कहने वाले से
समझने वाला बड़ा है ?

10 देश जल रहा है

सारे का सारा देश
जल रहा है आग में
ज्यों फट रही हो टेंशन से
मेरे सिर की नसें
बिना कारण के तरबतर
हो जाती है जिस्म सारी
ऐसे मे चाहिये
मुझे प्यार भारी ।

11 बहुत देर हुई

ये क्या हुआ,
चुप्पी की दीवार
दोनो के बीच
कब उग आई ।
वे ही शब्द
देते हैं दोनो के लिए
अलग अलग अर्थ ।
बहुत देर हुई
एक दूसरे को
सहेजने
समझने में ।
कमजोर आंखे,
बारीक अक्षरों वाली
मोटी सी किताब ।
चश्मा कहां से लाएं
ऐसा जो
जो लिखा है
वही पढ़े ।

12 गल्तियां

दूसरों की गल्तियां
बहुत करी अनदेखी
अपने को आज मैं
किस कठघरे मे रखूं,
भाग्य की खिड़कियां
बन्द कैसे हो गई
इस नमी को कैसे
ऊलीच पाएंगी पलकें
एक करीबी
जो होने को थी तुम्हारे पास,
दूर, बहुत दूर
मेरी चाहत हो गई ।

13 औरत

सबसे बड़ी चापलूस है औरत,
महज अच्छे दिखने
अच्छे लगने के चक्कर मे
हो जाती है बलि
परायों के लिए ।
सबसे कमजोर होकर भी
ताकतवर है औरत,
पहाड़ ढोती है
समंदर लांघती
लहरें काटती
राक्षसों को पटका देने मे माहिर
ताजिन्दगी मांगती है
आईने से प्यार ।
सबसे दयनीय है औरत,
दान मे जाती है ताजिन्दगी
अनजानो के लिए औरत ।

14

बहुत कठिन है
इस जिन्दगी को जीना
ज्यों बगैर भूख के
कौर निगलना ।
अजीब दहशत
मन मे समाई है
बगैर कारण
नींद नही आई है ।
जी चाहता है
अपने सब
आसपास रहें,
अंतिम समय है,
ईश्वर मे विश्वास रहे ।
उम्र मे जब जो चाहिये
मिल जाए तो भला
गलत समय
कोई भी ले बुला ।

15 आजकल

आजकल मेरे
देश की जवान पीढ़ी
आंख पर सपनो की
पट्टी बांधे दौड़ती है,
भविष्य के पोपले मुंह में
नकली दांत लगाए,
नकली हंसी चढ़ाए,
रोमांस की तलाश में
आधुनिकता की टोपी पहने
देश की जवान पीढ़ी
अपनी उम्र भूल गई है।

16 गर महसूस करो

हवा मे ठण्डक है,
गर महसूस करो
वर्ना तनाव में
उमस ही लगेगी,
और पसीने से तरबतर
हो जायेगी यह देह।
अन्तर में कहीं प्रेम
पार कर देता है
पिघले डामर की सड़क को,
गर महसूस करो
कि टायर मजबूत है
वर्ना जगह जगह
रूकना है यह काफिला,
और पिघलता लगेगा
डामर चारों तरफ।
एक दृढ़ता
जो अब तक ऊंघ रही थी
जागी है
असमंजस के जाले
तड़क गये और
मकड़ियां चली गई हैं
कहीं दूर वीराने में।

17 पतझड़ के बाद

मेरे देश के
लोगों के झुण्ड से
लग रहे हैं
पतझड़ के बाद वन।
बिखरे पत्ते
उनके व्यक्तित्वों के टुकड़े,
किसी की झुक गई कमर
तो कोई दूसरों की जड़ से
कर रहा अपना पोषण,
किसी के चेहरे पर मायूसी
बच्चे बिलखते हुए कहीं,
कहीं नये की प्रतीक्षा
तो किसी के पक्षी
उड़ जाने का अफसोस।
अजीब सा पवन
कैसा हो रहा मन,
सब के सब न जाने किस
बसंत की चाह में
सलवटों वाले फटे
कपड़े पहने खड़े हैं,
काट न दिये जाएं, खड़े हैं।

18 विरक्ति

मेरी पगडण्डी पर
उग आए हैं
अनेक झाड़ झंखड़
कयोंकि मैने उसपर
छोड़ दिया है चलना।
जब जब भी मेरे
कदम कसमसाये हैं
विरक्ति ने उसपर
लाखों पहरे लगाये हैं,
आंखे पथराई,
रास्ते हुए उजाड़,
रह गई है
हाथ की हाथ में कलम,
मन के मन ही में विचार।

19 स्याही को क्या शर्म ?

रोक नही सकता कोई
लाल टेसू के फूल को,
वह अपनी बात तो कहेगा
सुर्ख लाल होकर भी,
मुरझाकर भी ।
चीखना चिल्लाना ही
भाषा नही होती,
आंखों मे घुला दर्द
चेहरे पर आए भाव
बोल सकते हैं कभी कभी
अंदर ही अंदर की आग
बड़ी गर्म होती है
कलम को कर देती है लाल,
वह चाहे जो लिखे,
तब स्याही को क्या शर्म ?

20 तन और मन के बीच

तुम कैसे
अपने बेटे पोतों में
रची बसी रहती हो ?
एक मै हूं
मैं कहीं
और मन कहीं
उड़ जाता है ।
तुम बैठी बैठी
कैसे उम्र को हराती हो,
जिन्दगी के हर पल को
स्वाद से पी जाती हो,
एक मैं हूं
उम्र का हर कौर
बेस्वाद सा लगता है,
तन और मन के बीच
गर्म उबलता सोता बहता है ।

21 अहम् सो गया है

हिन्दुस्तान में
महंगाई की तरह
ऊंचाई बढ़ती जा रही है
कि जुते की हिल
एक इंच, डेढ़ इंच, दो इंच
या ढाई इंच से भी आगे
बढ़ती जा रही है ।
बड़ा मेहनती है यहां आदमी
बड़ी मेहनती है यहां औरत
पांव में बांधे वजन किलोभर
नीचा दिखाने को आतुर ।
आंखों में कुण्ठा का काजल डाले
गढ़ रहा है इतिहास
अतीत की ऊंचाईयों को भूलता हुआ
चला जा रहा है बदहवास
कि क्या हो गया है
कहीं इनका अहम् खो गया है
हाथ मे कटोरा लिये
परदेसी के आगे
झुकता जा रहा है आदमी ।

22 इज्जत

रिश्तेदार पूछते हैं
कार है ?
नहीं ।
बंगला है,
नहीं ।
नौकर तो होंगे,
नहीं ।
तो फिर क्या ?
हमने कहा,
इज्जत ।
बोले
बको मत,
वह गल्ती से
अभीतक हम
तुम्हारी करती है ।

23 तसल्ली

कोई नही देता है
तसल्ली वीरानो को,
क्यों नही झपक जाती पलभर
ये वाट जोहती आंखे,
इन्द्रधनुष क्यों नही काम आता
इन नंगे भूखों के,
रेल की सीटी
क्यों नही करती काम
भूखों के भोंगो का,
धूंए की चादर
क्यों नही तन जाती,
विचारों की लड़ियां
क्यों मूक ही रह जाती ,
इस भीड़ भरी दुनिया में,
अपना कोई क्यों नही ?

24 ईश्वर भी नेता है

मेरा ईश्वर भी नेता है,
रिश्वत जो भी देता है
उसके सिर पर खुश हो
हाथ रख देता है,
फुटपाथ पर पड़े हजारों
ईश भजन करते हैं,
तो क्या,
शुद्ध मन से रचे
रचना कोई
तो क्या,
पाप पुण्य,
कर्मफल,
व्यावहारिकता का
जामा पहने
आंख बंद कर लेता है,
उसे तो चाहिये
नित नये श्रृंगार
हीरे मोती माणक सोना
ब्लेकमनी वालों के
हाथों से प्रसाद
और उससे ज्यादा
ढोंगी पंडितों का वास
अगर आजाए कोई नेता
उसके पास
तो धन्य हो जाए
मंदिर की धरती और आकाश,
दलबदल करे नेता
या करे अत्याचार,
व्यभिचार या भृष्टाचार,
प्रभु आशीषों के लिये
रखते हैं ऊंचा हाथ,
मंदिर हो,
मस्जिद हो या हो
गिरजाघर या गुरद्वारा
खुला मिलेगा हर वक्त
नेता को हर द्वार,
दीनहीन की क्या,
कौन उसकी कहीं सुनता,
करता रहे प्रभु के गुणगान

http://www.abindore.com

स्नेहा भण्डारी का काव्य - सृजन

एक

परिभाषाओं में जीवन

काम करते-करते
झुक गयी तुम्हारी कमर
रोते रोते धुँधली हो गयी
मेरे आसपास की दुनिया
नासमझी का रेगिस्तान
न तुमने पार किया
न मैंने।
तुम अपनी बुद्धि ओढ़े
शब्द खोजते रहे
मुझे समझाने को
मैं इन्तज़ार कैसे करती
तुम्हारे सोच-विचार का।
बड़ी छोटी है झोपड़ी
भर गयी शब्दों से लबालब
न जाने कब ढह जाएगी।
बच्चे तो काटते रहे हैं
धूप में दिन भर
घटा हमारे सिर से भी
उड़ जाएगी।
जीवन परिभाषाओं में
बँध नहीं सकता। ☐

दो

झूमता मन

यह कैसा गम?
यह कैसी ख़ुशी?
कि कुछ अनचाहा हो जाए
तो उमड़ पड़ती हैं
आँखें बेतहाशा
और समंदर चारों ओर
लहराता है
मन डूबता-उतराता है
और ख़ुशी में
ठहाकों से पट जाती है
धरती
ज़िन्दगी लगने लगती है
आशाओं के सितारों से
जड़ी एक थाल
मन झूमता है
सच्चाई से कतराता है। ☐

तीन

इच्छाएँ

इच्छाएँ पहाड़-सी
अडिग हो
ठहर गयीं जहाँ-की-तहाँ।
इच्छाएँ नदी हो गयीं
लहरायीं
पूरब-से-पश्चिम तक।
इच्छाएँ तालाब बनीं
छलछलायीं
डबडबायी आँख-सी।
इच्छाएँ वह न हो सकीं
कि फैलतीं यहाँ-से-वहाँ।
इच्छा मेरी आकाश हो गयी
शून्य है
यहाँ भी : वहाँ भी। ❑

चार

गुस्से की गठरी

बहुत ऊब जाती हूँ
जब उठानी पड़ती है,
किसी के तनाव में उभरी
गुस्से की गठरी।
मैं गुलाम-सी गुपचुप
चलती जाती हूँ
और हाथ रख-रख
चुपचाप महसूसती हूँ
कि
यह गुस्सा कौन-सा?
कितने वजन का है?
और पहेली खुद पूछती हूँ
हल करती हूँ,
कितना पनपेगा?
कितना गल जाएगा? ❑

पाँच

बड़े सपने

यह बिखरा-बिखरा घर
बेतरतीब आलमारियाँ
अस्त-व्यस्त कपड़े
तुम्हारे मन के
उचाटपन को दर्शाते हैं।
ये उखड़ा-उखड़ा मूड
ये बड़े सपने
और छोटी बातों के प्रति
उदासीनता
तुम्हारी तबियत
खराब बतलाती है।
करो-
प्रेम करो-
माटी से,
इन्सान से,
काम से। □

छह

कहीं दूर

हवा में ठण्डक
बशर्ते कि महसूस करो
वरना
तनाव में
उमस ही लगेगी
और पसीने से तरबतर
हो जाएगी यह देह
अंतर में कहीं प्रेम
पार कर देता है
पिघले डामर की सड़क को
गर महसूस करो
कि टायर मजबूत है
वरना
जगह-जगह रुकना है,
यह क़ाफ़िला
और पिघलता लगेगा डामर
चारों तरफ़
एक दृढ़ता जो अब तक बन रही थी
जागी है
सारे असमंजस के जाले
टूट गये
मकड़ियाँ चली गयीं
कहीं दूर वीराने में। □

सात

तलाश जारी है

प्यार ढूंढने के लिए
मैंने नदियों को
यहाँ-से-वहाँ भेज रखा है
वे कलकल करतीं
ढूंढती हैं शहरों में, जंगलों में।
समंदर से बोला
वह गरजता यहाँ-से-वहाँ
हर नदी की बात कान में
गुपचुप सुन रहा है
अब तक
पहाड़ों ने तो
आसमान सर पर उठा लिया
हर हवा की तलाशी लेते हैं
डरे हैं,
बादल इसी परेशानी में
गरजते हैं बरसते हैं
फूलों की पेशानी
सुबह-सुबह
तर हो जाती है पसीने से
लेकिन कलम से
जब मैंने तेरा नाम लिखा
तभी प्यार बिजली बन चमका।
मुझे अहसास हुआ,
फिर भी तलाश जारी है
बार-बार बिजली के चमकने की।
मुझे मालूम है
तेरा अस्तित्व। □

आठ

आँखों के आर-पार

पहली बार
झाँक लिया मैंने
आँखों के आर-पार
और मेरी नाव
डगमगाने लगी है,
ऐसे इधर-से-उधर
डोलते रहने में क्या?
चुपचाप अकेले में
बोलते रहने में क्या?
कोई ऐसा काम नहीं
जो मैं बँटा सकूं
कोई भी पतवार नहीं
जो मैं चला सकूं
छोड़ दी मैंने तो
हवा के भरोसे सब
क्योंकि इसके बिना
दिखती कोई राह नहीं। □

नौ

आँसुओं की नमी

अहं की दीवार
यहां कैसे उठ गयी?
मेरे-तुम्हारे बीच
परिचितों की मकड़ी
जाले-पर-जाले बुन रही है।
इच्छाओं के हथौड़े से
पलस्तर कैसे उखाड़ूँ?
जिद की काई
यहाँ-से-वहाँ
जमी है झाईं
कि आँसुओं की नमी ने
कर दिया धुँधलका
आँखों की ज्योत
चाहे हो गयी हो कम
फिर भी आशाओं का उजाला
इस ओर काफ़ी है। □

दस

इस राह : उस राह

कुछ नहीं होगा
कितने ही आँधी-तूफान
और भूकम्प हों,
ये पतझड़
ये बसन्त आते रहेंगे,
आदमी भटकता रहेगा,
इस राह : उस राह।
कोई मसीहा पैदा नहीं होता,
जो हुआ
उसे अपनी पड़ी है।
कौन राह दिखलाये?
भीड़ भटक रही है,
कभी इसकी बात पर
कभी उसकी बात पर। □

परायी जमीन

ये भीड़ भरा वातावरण
मेरे लिए बियाबान है-
कि एक अपना
पास हो कर भी दूर है,
ये जीवन की आशाएँ
आवाज़ की तरह
घुल गयीं हवा में,
ये प्यार-दुलार ढूँढती आँखें
लगता है, शरीर पर
पचासों ट्रक गुज़र जाते हैं,
सारे अपने,
पराये हो गये।
गुमसुम चाँदनी में
पचासों हॉर्न बज जाते हैं
हाथ-पैर सुन्न हो कर।
पूछते हैं
अकारथ हमारा बोझ
क्यों ढो रहे हो?
परायी जमीन पर
बीज क्यों बो रहे हो? □

अनगिनत आहटें

कितनी भावनाएँ
सिंक गयीं रोटियों के साथ,
कितनी रोटियाँ जलीं
भावनाओं में उलझ कर
कोई तालमेल नहीं
अपने-अपनों का
कोई कब तक
इन्तज़ार करे?
आने वाला आ कर भी
नहीं आता।
जाने वाला
जा कर भी
नहीं जाता।
अनगिनत आहटें
जिनकी अलग-अलग पहचान,
फिर भी
वही भ्रम! □

तेरह

पगडण्डी पर

मेरी पगडण्डी पर
उग आये हैं
अनेक झाड़-झंखाड़
क्योंकि मैंने उस पर
छोड़ दिया चलना।
जब-जब भी मेरे
कदम कसमसाये
विरक्ति ने उस पर
लाखों पहरे लगाये हैं,
आँखें पथरायीं
रास्ते हुए उजाड़
रह गये हैं
मन-ही-मन में विचार
और
हाथ-की-हाथ में कलम। □

चौदह

दूर पहाड़ों पर

शान्ति जो मेरे मन में
दुबकी बैठी थी
पंख फड़फड़ा दूर पहाड़ों पर जा बैठी है
हवाओं के साथ
करने लगी है साजिश
जब से मेरे मन में
प्रेम पाने की लालसा जागी
वो तारों में
लुका-छिपी कर
टिमटिमाने लगी है
मेरी आँखें
चाँद-सूरज बन
उसका पीछा करतीं थकती हैं
वह अनन्त आकाश से पंख बना
फैल गयी मेरे चारों ओर
मुझसे छूती
मुझसे दूर-दूर
समय के हाथ भी
बाँध नहीं पाते जिसे
इस मौन में वह छुप जाती है
कभी शोर-शराबे में
दिखती है, दुबक जाती है। □

तेरी याद

आज फिर
नाव मेरी डगमगायी
कि बेमतलब ही
हिचकी ज़ोर से आयी
बहुत छुपाया
छुपा नहीं सकती
आज तेरी याद तो
मुझे भी बहुत आयी
अकेलेपन ने
धुएँ की तरह
घेर लिया मुझको! □

बहुत व्यस्त

कुछ भी सोचना
वाजिब है,
क्योंकि
ज़िन्दगी जितने खन्दक
पार कर गयी
कर गयी,
अब तो हर गड्ढा
पाताल पार लगता है
यह गुमसुम वीरान
ज़िन्दगी
स्वयं एक पहेली है।
मुझे कुछ सुनना नहीं है,
साथी बहुत व्यस्त हैं।
मुझे कुछ कहना नहीं है,
साथी बहुत व्यस्त हैं।
मुझे तो रोना नहीं है,
साथी बहुत व्यस्त हैं। □

सत्रह

उम्र कटती जाती है

जो सोचती हूँ
उन पर लटका देती हूँ
बड़े-बड़े ताले।
कहीं कोई जान न ले
चेहरे पर अनचाही बातें।
आँकने की कोशिश रहती है,
आदर्श रोप देती हूँ हज़ार
फिर भी
आँखें कह देती हैं-
सारे अनचाहे बोल
अंतरतम की सारी आवाज़,
इस रस्साकसी में
ज़िन्दगी की लम्बी उम्र
कटती जाती है। □

अठारह

मायूसी की चादरें

अपनी इच्छाओं पर
जड़ दिये हैं मैंने ताले
आँखों पर बाँध कर पट्टी
मोटर साइकिल की रफ़्तार
बढ़ा दी है।
फूले-फूले बाग में
वीराने की तख़्ती लगा दी है।
जब उत्साह कब्र में हो
ऐसा ही होता है
हँसना मना है
ख़ुशी हो और ज़ाहिर न हो
मुझसे नहीं होता
मैंने फूल-फूले पेड़ों पर
ढँक दी है मायूसी की चादरें।
बन्द कर दिया पेटी में
या तो वह उगेगा
या तो अस्त हो जाएगा
मेरा जनाज़ा। □

अगीत

गिद्ध से भी बदतर

हमें क्या मालूम था
तुम गिद्ध हो।
जो मौक़ा मिला
नोच-नोच खाओगे।
नहीं, तुम गिद्ध से भी बदतर हो,
वे मिल-जुलकर खाते हैं
यहाँ तक अपने दोस्तों को बुलाते हैं।
तुम तो एक-दूसरे पर झपट रहे,
आपस में अकड़ रहे,
सारे सबूत मिल गये,
जिससे यह सिद्ध हो,
फिर भी हमें पता है
तुम्हारे हाथ में सत्ता है।
हम तो चाहते हैं,
सब हो जाओ एक।
बड़ी बदबू है,
न रहा कोई नेक,
नहीं चाहते कि कोई हो सके नेक
चाहे कितना ही कर लो तुम भोग। □

गीत

पतझड़ के बाद

मेरे देश के
लोगों के झुण्ड-से
लग रहे हैं
पतझड़ के बाद वन।
बिखरे पत्ते
उनके व्यक्तित्वों के टुकड़े,
किसी की झुक गयी कमर
तो कोई दूसरों की जड़ से
कर रहा अपना पोषण,
किसी के चेहरे पर मायूसी
बच्चे बिलखते हुए कहीं,
कहीं नये की प्रतीक्षा
तो किसी के पक्षी
उड़ जाने का अफ़सोस।
अजीब-सा पवन
कैसा हो रहा मन,
सब-के-सब न जाने किस
बसन्त की चाह में
सलवटों वाले फटे
कपड़े पहने खड़े हैं,
काट न दिये जाएँ, खड़े हैं। □

http://www.snehabhandari.com